ISSN NO.2395-0692
International Journal of
IJAHMS Arts, Humanities and Management Studies

विदेशों में जैनधर्म का स्वरूप एक परिकल्पना व उसका चिंतन

रत्नेश जैन

शोधार्थी तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

जैन धर्म भारत में प्रचलित विभिन्न धर्मो में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इस धर्म के अनुयायी भारत के प्रायः सभी भागों में पाये जाते हैं। ये अनुयायी मुख्यतः दो सम्प्रदायों- दिगम्बर एवं श्वेताम्बर में विभक्त हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी अपनी देवमूर्तियों को बिना किसी साज-सज्जा के पूजते हैं जबकि वेताम्बरी अपनी पूज्य प्रतिमाओं को सुन्दर मुकुट एवं विभिन्न आभूशणों से सजाकर उपकी पूजा अर्चना करते हैं। भारत में पाई गयी प्राचीनतम प्रतिमायें नग्न है क्योंकि उस समय केवल दिगम्बर सम्प्रदाय का ही प्राबल्य था परंतु ताब्दियों पश्चात् श्वेताम्बर सम्प्रदाय से संबंधित जैन प्रतिमाओं का निर्माण होने लगा और इस प्रकार अब दोनों प्रकार की प्रतिमायें आज भी भारत के विभिन्न भागों में उनके अनुयाइयों द्वारा पूजी जाती हैं। प्रारंभ में अनेक जैन विद्वानों का विचार था कि उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म अब से हजारों साल पूर्व भी विद्यमान था और जब सन् १९१२ मैं हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों की खुदाई में नग्न मानव धड़ एवं ऐसी अन्य पुरातत्वीय महत्व की वस्तूएँ प्राप्त हुई, तो उन विद्वानों ने उनको भी जैन धर्म से संबंधित ठहराया परन्तु अनेक आधुनिक विद्वानों ने शोध के आधार पर इस प्रचलित धारणा का खण्डन करते हुये उन्हें प्राचीनतम यक्ष प्रतिमाओं का प्रतिरूप बतलाया है।

विदेशों में रहने वाले कलाप्रेमियों का ध्यान जब जैन मूर्ति कला की ओर आकर्षित हुआ तो धीरे-धीरे उन्हौंने भी भारत से मुर्ति सम्पदा को अपने-अपने देशों में ले जाकर संग्रहालयों में प्रदर्शित किया। भारत की भांति प्रायः सभी विदेशी संग्रहालय में जैन कला संबंधी एक से एक सुन्दर उदाहरण देखने को मिलते है ।

अमेरिका,फिनलैण्ड,सोवियत गणराज्य, चीन एवं मंगोलिया, तिब्बत, जापान, ईरान, तुर्किस्तान, इटली, एबीसिनिया, इथोपिया, अफगानिस्तान, नेपाल, पाकिस्तान आदि विभिन्न देशों में किसी रूप में वर्तमानकाल में जैनधर्म के सिद्धान्तों का पालन देखा जा सकता है। उनकी संस्कृति एवं सभ्यता पर इस धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है । इन देशों में मध्यकाल में आवागमन के साधनों का अभाव एक दूसरे की भा ाा से अपरिचित रहने के कारण, रहन-सहन, खानपान में कुछ-कुछ भिन्नता आने के कारण हम एक दूसरे से दूर हटते ही गये और अपने प्राचीन संबंधों को सब भूल गये ।

अमेरिका में लगभग २००० ईसापूर्व में संघपति जैन आचार्य 'क्वाजन कोटल' के नेतृत्व में श्रवण साधु अमेरिका पहुँचे और तत्पश्चात सैकड़ों

वर्षो तक श्रमण अमेरिका में जाकर बसते रहे। अमेरिका में आज भी अनेक स्थलों पर जैन धर्म श्रमण-संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता हैं। वहॉ जैन मंदिर के खण्डहर, प्रचुरता में पाये जाते हैं। कतिपय हस्तलिखित ग्रंथों में महत्वपूर्ण प्रमाण मिले हैं कि अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, टर्की आदि देशों तथा सोवियत संघ के जीवन-सागर एवं ओब की खाड़ी से जो भी उत्तर तक तथा जाटविया से उललई के पश्चिमी छोर तक,किसी काल में जैनधर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार था। इन प्रदेशों में अनेक जैन-मंदिरों, जैन-तीर्थंकरों की विशाल मूर्तियों, धर्मशास्त्रों तथा जैन-मुनियों की विद्यमानता का उल्लेख मिलता है।

एन्साइक्लोपीडिया आफ वर्ल्ड रिलीजन्स के विश्वश्रुत लेखक श्री कीथ के अनुसार, ''बेंरिग जलडमरूमध्य से लेकर ग्रीनलैंड तक सारे उत्तरी ध्रुव सागर के तटवर्ती क्षेत्रों में कोई स्थान नहीं है जहॉ प्राचीन श्रमण संस्कृति के अवशेषना मिलते हों। श्रमण संस्कृति के अवशेष सोवियत यूनियन में साइबेरिया के बेरिंग जलडमरूमध्य से फिनलैण्ड, लैपलैण्ड, ग्रीनलैण्ड़ तक फैले हुये हैं। वहॉ यह संस्कृति प्राचीनकाल से निरन्तर न्यूनाधिक रूप से विद्यमान थी, परन्तु बाद में ईसाई धर्म के प्रचारकों ने इसे समूल नष्ट कर दिया। उस धर्म के श्रमण संन्यासी या तो मारे गये या उन्हौने आत्महत्या कर ली। साइबेरिया की तुर्क जातियों से चलकर यह धर्म तुर्किस्तान और मध्य एशिया के अन्य देश-प्रदेशों में भी फैला। दूसरी ओर इस संस्कृति ने मंगोलिया, चीन, तिब्बत और जापान को भी प्रभावित किया।

संस्कृति भारत के अधिकांश भागों में फैली तदुपरांत वह भारत की सीमाओं को लांघकर विश्व के अन्य देशों में प्रचलित हुई।और अन्ततोगत्वा उसका विश्व व्यापी प्रचार-प्रसार हुआ तथा वह संस्कृति कालांतर में अमेरिका,फिनलैण्ड,सोवियतगणराज्य, चीन एवं मंगोलिया,तिब्बत, जापान, ईरान, तुर्किस्तान, इटली, एबीसिनिया, इथोपिया, अफगानिस्तान, नेपाल, पाकिस्तान,यूरोप, रूस,उत्तरी और मध्य आफ्रीका, भूमध्यसागर, रोम,ईराक,जावा, सुमात्रा,श्रीलंका आदि संसार के सभी देशों में फैली तथा वह ४००० ईसा पूर्व से लेकर ईसा काल तक प्रचुरता से संसार भर में विद्यमान रही। इस श्रमण संस्कृति और सभ्यता का उत्स भारत था। ऋषभ देव के प्रति श्रमण और वैदिक संस्कृतियों ने ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व ने अपनी श्रद्धा और सम्मान अभिव्यक्त किया है। अपोलो ;चचवससवद्ध (सूर्यदेव),ठनसस ळवक (बाउल वृशदेव), तेशेब, रेशेफ आदि नामों से विश्व के विभिन्न भागों में पूजे गये। सार्वभौम वरेण्यता एवं विश्वएक्य की दृश्टि से यह उदाहरण संभवतः विश्व का अप्रतिम उदाहरण है। लगभग २००० ईसा पूर्व में और आर्यों के आक्रमण के समय मध्य ऐि ाया और ईरानी क्षेत्र में वृत्तों का निवास था। अराकोसया और

जेद्रोसिया में वृत्त, दास दस्यु, पणि, यदु और तुर्वस निवास करते थे। इन जातियों के अतिरिक्त सरस्वती और दृषद्वती नदियों के दोआब क्षेत्र और उसके पूर्व और दक्षिण में अनु, द्रह्यु, पुरू, मेद, मत्स्य, अजस्, बिग्रु और यक्ष जातियाँ विद्यमान थीं। ये विभिन्न जातियां जैन धर्म (श्रमण धर्म) का पालन करती थीं।

तिब्बत और जैनधर्म

‘‘तिब्बत के हिमिन मठ में रूसी पर्यटक नोटोबिच ने पालीभाशा का एक ग्रंथ प्राप्त किया था, उसमें स्पश्ट लिखा है कि ’’ईसा ने भारत तथा भौट देश ‘‘तिब्बत‘‘ जाकर वहॉ अज्ञातवास किया था, और वहॉ उन्होने जैन-साधुओं के साथ साक्षात्कार किया था।’’[१] हिमालय क्षेत्र में तिब्बत में महावीर का विहार हुआ था तथा वहॉ निर्वासित वर्तमान डिगरी जाति के पूर्वज तथा गढ़वाल और तराई के क्षेत्र में निर्वासित डिगरी जाति के पूर्वज जैन थे। डिगरी और डिमरी भाब्द दिग्म्बरी शब्द के अपभ्रंशरूप है । वहां जैन पुरातात्विक सामग्री प्रचुरता से प्राप्त होती है। तीर्थ अष्टापद (कैला ा पर्वत) हिम-प्रदे ा के नाम से विख्यात है, जो हिमालय-पर्वत के बीच शिखरमाल में स्थित है, और तिब्बत में है, जहॉ आदिनाथ भगवान की निर्वाण भूमि है। इस प्रकार देखा जाये तो विदेशों में जैनियों ने अपना आधिपत्य जमा कर रखा है।

“श्री भिक्खु चमनलाल ने वहाँ ३० वर्ष व्यतीत किए और भारतीयों के वहाँ बस जाने के प्रमाण एकत्रित किए। यद्यपि उस देश में हाथी और चीलें नही हैं तो भी वहाँ पत्थर पर उनके चित्रों की खुदाई भारतीय प्रभाव की साक्षी ळें ईसवी सन ४०० में चीनी यात्री फाह्यान भारत आकर वहाँ से २०० यात्रियों के बैठने की क्षमता वाली नाव में चीन वापस गया था। भारत में बने हुए इतनी क्षमता वाले जहाज उन समुद्रों को पार करते थे। पेरिस (फ्रांस) के म्यूजियम में भी ऋषभ देव की एक सुन्दर मनोज्ञ कलाकृति विद्यमान है।‘‘[२]

चीन में जैन धर्म

चीन की संस्कृति पर जैन-संस्कृति का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । चीन में भगवान ऋशभदेव के एक पुत्र का भाासन था । जैन-संघों ने चीन में अहिंसा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया था। अति प्राचीनकाल में भी श्रमण सन्यासी यहॉ विहार करते थे। हिमालय क्षेत्र आविस्थान कोदिया और कैस्पियाना तक पहले ही श्रमण-संस्कृति का प्रचार-प्रसार हो चुका था।

मुंगार देश में जैनधर्म है, यहॉ ’बाधाम’ जाति के सैनी हैं । इस नगर में जैनियों के ८००० घर हैं तथा २००० बहुत सुंदर जैन मंदिर हैं ।

www.ijahms.com

ISSN NO.2395-0692
IJAHMS International Journal of Arts, Humanities and Management Studies

सहस्रों वर्ष पूर्व जैन साधु और प्रचारक विश्वभर में गये। विशेषकर एशियाई देशों में उन्हें अधिक सफलता मिली। चक्रवर्ती सम्राट भरत, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, मौर्य सम्राट,सम्प्रति, सम्राट खारवेल आदि जैन शासकों के काल में इस प्रकार के विश्वव्यापी प्रयास किये गये। बौद्ध प्रचारक तो इन क्षेत्रों में धर्म प्रचार के बाद में पहुंचे तथा उनके हजारों वर्श पूर्व से इन क्षेत्रों मे जैन धर्म का ही प्रसार था।

''आर्यदेव द्वारा रचित "शट शास्त्र" के, जिसकी मूल संस्कृति प्रति लुप्त हो चुकी है। प्रथम अध्याय में कपिल, उलूक(कणाद),ऋशभ आदि का उल्लेख हुआ है तथा यह लिखा है कि ऋशभ के शिष्यगण निर्ग्रन्थों के धर्मग्रन्थों का पाठ करते हैं। उसमे तपस्या, के शलुंचन आदि क्रियाओं का उल्लेख है।''[३]

''उपाय हृदय शास्त्र में ऋषभदेव के अनुयायियों के मूल सिद्वांत चित्संग की समीक्षा के साथ प्रकाशित हुये थे जिसमें चित्संग ने लिखा है कि कपिल,उलूक आकद श्रषियों के मत ऋषभदेव धर्म की शाखायें हैं।''[४] जो कि इस दृष्टि से दर्शनीय है। चित्संग ने स्वर्ण सप्तति टीका में श्रषभ द्वारा भाग्यहेतुवाद का उल्लेख किया है। इन सब और अन्य सैकड़ों बौद्ध ग्रन्थों में ऋषभ के सन्दर्भ में पांच प्रकार के ज्ञान (श्रुत,मति,अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञान), चार कशायों, स्याद्वाद आठ कर्मों आदि जैन धर्म के तत्वों का विस्तार से उल्लेख हुआ है। सर्वत्र ऋषभ का उल्लेख"भगवत् ऋषभ" के रूप में हुआ है।

जापान में जैन धर्मः-

अन्तर्राष्टीय ख्याति के जापानी विद्वान् प्रोफेसर नाकामुरा ने चीनी भाषा के बौद्ध त्रिपिटक साहित्य का गम्भीर मंथन किया है तथा उन्होंने उसमें सर्वत्र स्थान-स्थान पर ऋषभदेव विशयक सन्दर्भों का विस्तार से चैन और उल्लेखन किया है उनका कथन है कि बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों के चीनी भाषा में जो रूपान्तरित संस्करण उपलब्ध हैं उनमें यत्र- तत्र जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव विशयक उल्लेख मिलते हैं। ऋषभ देव के व्यक्तित्व से जापानी भी पर्ण परित हैं जापानी उन्हें "रोक् शब" के नाम से पुकारते हैं।

अफगानिस्तान में जैन धर्मः-

अफगानिस्तान प्राचीन काल में भारत का भाग था। तथा अफगानिस्तान में सर्वत्र जैन श्रमण धर्मानुयायी निवास करते थे। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व संयुक्त महानिदेशक श्री टी.एन. रामचन्द्रन ने अफगानिस्तान गए एक शिष्ट मण्डल के नेता के रूप मे यह मत व्यक्त किया था कि "मैने ई. छठी सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध चीनी यात्री "हेनसांग" के इस कथन का

www.ijahms.com

सत्यापन किया है कि यहाँ जैन तीर्थंकरों के अनुयायी बड़ी संख्या में हैं जो लूणदेव या शिश्नदेव की उपासना करते हैं।

''बौद्ध चीनी यात्री हेनसांग ने ६८६ ईसवी से ७१२ ईसवी तक भारत भ्रमण किया था। उसके यात्रा विवरण के अनुसार, अफगानिस्तान के कपिश देश मे दस के करीब देव मन्दिर (जैन मन्दिर)और एक हजार के करीब अन्य मतावलम्बियों के मन्दिर हैं। यहां बड़ी संख्या में निग्रन्थ (जैन मुनि) भी विहार करते हैं''[११] गांधार (प्राचीन नाम आश्वकायन) मे सिर पर तीन छात्रों सहित ऋषभदेव की खड्गासन मूर्ति मिली है। जो १७५ फिट ऊँची है और उसके साथ २३ अन्य तीर्थंकरों की छोटी प्रतिमायें पहाड़ को तराश कर बनायी गयी थीं। दूर -दूर के लोग यहाँ जैन तीर्थ यात्रा करने के लिए आते थे।चीनी यात्री हेनसांग (६८६-७१२ईसवी) के यात्रा विवरण के अनुसार कपिश देश मे १० जैन देव मन्दिर हैं यहाँ निर्ग्रन्थ जैन मुनि भी धर्म प्रचारार्थ विहार करते हैं। काबुल मे भी जैन धर्म का प्रसार था। वहाँ जैन प्रतिमायें उत्खनन मे निकलती रहती हैं।''[५]

नेपाल एवं भूटान मे जैन धर्मः-

नेपाल का जैन धर्म के साथ प्राचीन काल से ही बड़ा सम्बन्ध रहा है। लिच्छवि काल मे बिहार से नेपाल मे आये लिच्छवि जैन धर्मावलम्बी थे। आचार्य भद्रबाहु महावीर निर्वाण संवत् १७० मे नेपाल गये थे।और नेपाल की कन्दराओं मे उन्होंने तपस्या की थी जिससे संपूर्ण हिमालय क्षेत्र मे जैन धर्म की बड़ी प्रभावना हुई थी। नेपाल का प्राचीन इतिहास भी इस बात का साक्षी है। उस क्षेत्र की बदरीनाथ,केदारनाथ एवं पशुपतिनाथ की मूर्तियां जैन मुद्रा पद्मासन मे है और उन पर ऋषभ प्रतिमा के अन्य चिह्न भी विद्यमान हैं। १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथ और २१वें तीर्थंकर नमिनाथ नेपाल मे ही जनकपुर धाम (मिथिला नगरी) मे पैदा हुए थे और दोनों तीर्थंकरों के चार-चार कल्याणक भी यहां हुए थे। नेपाल मे हजारों वर्ष पूर्व मे श्रमण संस्कृति की निरन्तर प्रभावना बनी रही है। जिसके चिहन आज भी सैंकड़ों स्थानों पर लक्षित होते हैं। ऋषभ पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत ने नेपाल के हरिहर क्षेत्र मे काली गंडकी नदी के तट पर पुलहाश्रम मे तपस्या की थी।

''भूटान मे जैन धर्म का खूब प्रसार था। तथा जैन मन्दिर और जैन साधु-साध्वियाँ विद्यमान थे। जहाँ जैन तीर्थयात्री समय-समय पर जाते रहें हैं। विक्रमी संवत् १८०६ में दिगम्बर जैन तीर्थयात्री लामचीदास गोलालारे ब्रह्मचारी भूटान देश से जैन तीर्थों की यात्रा के लिए गया था। जिसके विस्तृत यात्रा विवरण जैन शास्त्र भण्डार तिजारा (राजस्थान) की १०८ प्रतियाँ भिन्न- भिन्न जैन शास्त्र भण्डारों मे सुरक्षित हैं।''[६]

श्री लंका मे जैन धर्मः-

भारत और लंका (सिंहलद्वीप) (के युगों पुराने सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे है । सिंहलद्वीप में प्राचीन काल में जैन धर्म का प्रचार था।) बौद्ध ग्रन्थ महावंश में कहा गया है कि राजा पांडुकामय ने चतुर्थ शती ईसा पूर्व में अपनी राजधानी अनुराधापुर में दो दो जैन निर्ग्रन्थों के लिए एक मन्दिर और एक मठ बनवाया था । यह मन्दिर और मठ ३८.६० ईसा पूर्व तक राजा वट्टगामिनी के काल तक विद्यमान रहा । ये जैन स्मारक २१ राजाओं के शासनकाल तक विद्यमान रहे और बाद में बौद्ध संघाराम बना लिये गये । (सम्पूर्ण सिंहलदीप के जनजीवन पर जैन संस्कुति की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है । जैन मुनि यशकीर्ति ने ईसा काल की आरम्भिक शताब्दियों में सिंहलद्वीप जाकर वहॉ जैन धर्म का प्रचार किया था । जैन श्रावक सदैव समुद्र पार जाते थे, इसका उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है। महावंश के अनुसार, ईसा पूर्व ४३० में जब अनुराधापुर बसा तब जैन श्रावक वहॉ विद्यमान थे।वहॉ अनुराधापुर के राजा पांडुकामय ने ज्योतिया निग्गंठ के लिए घर बनवाया था। राजा पांडुकामय ने कुमण्ड निग्गंठ के लिए एक देवालय बनवाया था ।

‘‘राजा बाद में बौद्ध हो जाने के कारण, राजा बट्टगमिनी के शासन काल से पहले जैन मठ के मुनि श्रीगिरि का विशे ा प्रभाव था । बाद में बौद्ध हो जाने के कारण, राजा बट्टगमिनि के शासन काल (८६ से ७७ ईसा पूर्व) में उसके धर्म परिवर्तन के कारण जैन मठ को घोर हानि पहॅुची और अन्ततोगत्वा जैन मठ, को बौद्ध विहार में सम्मिलित कर लिया गया । श्रीलंका के बाद के इतिहास से ज्ञात होता है कि बाद में जब राजा योगाधाना कास्सपा-१ द्वारा निकाले जाने पर अट्ठारह वर्ष तक भारत में निर्वासन में रहा तब उसने श्रीलंका के सेनापति और विशाल जैन समुदाय के साथ गुप्त रूप से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखा था तथा श्रीलंका के जैन साधु वर्ग के सहयोग और सहायता से सन्४९५ में पुनः विजयी होकर श्रीलंका का शासक बना, यद्यपि बाद में मोगलाना बौद्ध लोगों के श्रीलंका में समिरिया , अनुराधापुर आदि अनेक जैन केन्द्र और विशाल मठ रहे हैं । श्रीलंका में जैन श्रावकों और साधुओं ने स्थान-स्थान पर चौबिस जैन तीर्थंकरों के भव्य मन्दिर बनवाये । सुप्रसिद्ध पुरातत्व विद फर्ग्यूसन ने लिखा है कि कुछ यूरोपियन लोगों ने श्रीलंका में सात और तीन फणों वाली मूर्तियों के चित्र लिए थे । सात या नौ फण पार्श्वनाथ की मूर्तियों पर और तीन फण उनके शासनदेव धरणेन्द्र और शासनदेवी पद्मावती की मूर्ति पर बनाये जाते हैं । भारत के सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता श्री पी. सी. राय चौधरी ने श्रीलंका में जैन धर्म कि विषय में विस्तार से शोध खोज की है । विक्रम की १४ वीं शती में हो गये जैनाचार्य जिन प्रभसूरि ने अपने चतुरशिति (८४) महातीर्थ नामक कल्प में यहॉ श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर के महातीर्थ का उल्लेख किया है।‘‘[७]

ISSN NO.2395-0692

IJAHMS International Journal of Arts, Humanities and Management Studies

ब्रह्मदेश (बर्मा)(स्वर्णभूमि) में जैन धर्म

''जैन शास्त्रों में ब्रह्मदेश को स्वर्णद्वीप कहा गया है । जगत प्रसिद्ध जैनाचार्य कालकाचार्य और उनके शिश्यगण सवर्णद्वीप में निवास करते थे । उनके प्रशिष्य श्रमण सागर अपने गण सहित वहीं पहले ही विद्यमान थे । वहॉ से उन्होंने आसपास के दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों के जैन धर्म का प्रचार किया था । थाईलैंड स्थित नागबुद्ध की नागफण वाली प्रतिमायें पार्श्वनाथ की प्रतिमायें है ।''[८]

पाकिस्तान के परिवर्ती क्षेत्रों में जैन धर्म

ऋषभदेव ने भरत को अयोध्या, बाहुबली को पोदनपुर तथा ९८ पुत्रों को संसार भर के देश प्रदान किये थे । बाहुबली ने बाद में अपने पुत्र महाबली को पादनपुर राज्य सौंपकर मुनि दीक्षा ली । पोदनपुर वर्तमान पाकिस्तान क्षेत्र में विजयार्घ पर्वत के निकट सिन्धु नदी के सुरम्य एवं रम्यक देश उत्तरापथ में था और जैन संस्कुति का अद्वितीय जगत-विख्यात विश्वकेन्द्र था। महाभारत (पोतन्य) का उल्लेख हुआ है । कालान्तर में पोदनपुर अज्ञात कारणों से नष्ट हो गया।

पाकिस्तानी क्षेत्र एवं सम्पूर्ण परिवर्ती देशों में जैन संस्कुति के सार्वभौम एवं सार्वयुगन प्रचार-प्रसार का लगभग आठ हजार वर्ष से भी अधिक पुराना इतिहास मिलता है । ऋषभ युग से लेकर नेमिनाथ के तीर्थकाल र्प्यन्त सम्पूर्ण विश्व में जैन संस्कुति की व्यापक प्रभावना रही । नदी घाटी सभ्यताओं में सर्वाधिक ज्ञात सभ्यता सिन्धु घाटी सभ्यता है जो पाकिस्तान और उसके परिवर्ती क्षेत्रों में फैली हुई थी।भारत, पाकिस्तान और परिवर्ती क्षेत्रों में लगभग २५० स्थानों पर हुए उत्खननों से इस व्यापक द्रविड़-विधाधर-व्रात्य-पाणि-नाग-असुर संसकृति पर प्रकाश पड़ा है।इसका उत्कर्षकाल लगभग ४००० ईसा पूर्व रहा है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इस सभ्यता के परम आराध्य एवं उपास्य थे, जैसा कि ऋग्वेद की १४१ ऋषभवाची ऋचाओं, केशीसूक्त एवं भारत जाति परक उल्लेखों से तथा अथर्ववेद के व्रात्य काण्ड, विभिन्न उपनिषदों एवं सुविस्तृत पुराण साहत्यि से प्रकट है ।

अफ्रीका में जैनधर्म

अफ्रीका में जैन धर्म के इतिहास में अगरे एक ही महाद्वीप पर यहूदी, ईसाई और इस्लाम के इतिहास के साथ तुलना की जायें तो अपेक्षाकृत कम है । अफ्रीका में लगभग २०००० जैन और लगभग १० संगठन रहे होगें।जैन धर्म भारत से होता हुआ युगांडा, सूडान, तंजानिया और फिर केन्या तक फैलता गया। १९ वीं सदी के दौरान अफ्रीका में प्रवेश किया। इसका कारण ईदी अमीन की नीतियों को १९७२ में युगांडा से एशियाई लोगो का पलसयलन हुआ तथा आस्ट्रेलिया

ISSN NO.2395-0692
IJAHMS International Journal of Arts, Humanities and Management Studies

जैसे देशों एवं महाद्वीपों पर रहने के लिए मजबूर कर दिया। इस प्रकार जैन धर्म का प्रचार-प्रसार होता चला गया ।

अमेरिका में जैनधर्म

अमेरिका में लगभग २००० ईसापूर्व में (आस्तीक-पूर्व-युग में) संघपति जैन आचार्य क्वाजलकोटल के नेतृत्व में पणि जाति के श्रमण संघ अमेरिका पहुँचे और तत्पश्चात सैकड़ो वर्षो तक श्रमण अमेरिका में जाकर बसते रहे, जैसा कि प्रसिद्ध अमेरिका इतिहासकार वोटन ने लिखा है । ये लोगमध्य एशिया से पेलीनेशिया और प्रशान्त महासागर से होकर अमेरिका पहुँचे थे तथा अन्तर्रा ट्रीय पणि (फिनिशयन) व्यापारी थे । ये ऋग्वेद में वर्णित उन जैन पणि व्यापारियों के वंशज थे जो कि भारत से मध्य एशिया में जाकर बसे थे और उनका तत्कालीन सम्पूर्ण सभ्य जगत से व्यापार सम्बन्ध और उन देशों पर आधिपत्य था । इनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन और साम्राज्य था । (जैम˘वतसक ब्रश्चिवमदमेपवे) ये अहि और नागवंशी थे तथा ये लोग ही इन क्षेत्रों का शासन-प्रबन्ध भी चलाते थे । इनसे पूर्व भी हजारों वर्षो से भारत से गये द्रविड़ लोगों का उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में निवास था तथा निरन्तर बना हुआ था ।

केन्या में जैनधर्म

केन्या में जैनधर्म का इतिहास करीब १०० साल का बताया जाता है।यहॉ सक्रिय रूप से जैन समुदाय द्वारा कई जैन सम्मेलन फिल्म समारोह और अन्य कार्यक्रम भी आयोजित कियें जाते थे, नैरौबी और मोग्वासा में जैन मन्दिर स्थित है ।

बेल्जियम में जैन धर्म

यूरोप में जैन समुदाय विशेष रूप से बेल्जियम में प्रवास करती है । यहॉ का जैन समुदाय ज्यादातर हीरे के कारोबार में शामिल है। बेल्जियम में करीब १५०० लोगों के होने का अनुमान बताया जाता है।बेल्जियम में भारतीय जैन हीरे के कम से कम दो तिहाई व्यापार को नियंत्रित करते है । और किसी ना किसी रूप में लगभग ३६ प्रतिशत हीरे की आपूर्ति भारत को की जाती है । हीरे के थोक व्यापार हेतु वे एंटवर्प में रहते है । वे एक सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में एंटवर्प के पास एक प्रमुख मन्दिर निर्माण कार्य भी कर रहे है। १९९२ में एंटवर्प के जैन साहित्य केन्द्र को १२ समिति के सदस्य तथा ५२ संस्थापक सदस्यों के साथ एक समिति बनाई गई थी।

तथा एक जैन मन्दिर एवं एक ध्यान केन्द्र के लियें जमीन खरीदी गई थी। २००१ में एंटवर्प जैन मन्दिर और ध्यान केन्द्र का निर्माण भ्ाुरू किया ३१ जनवरी २००७ में जैन मूर्ति का कल्याणक भारत में हुआ था और जैन सन्यासियों, आचार्य श्री सुबोध सागर सूरीश्वर जी, आचार्य श्री

मनोहर सागर सूरीश्वर जी, आचार्य श्री उदयकीर्तिसागर सूरीश्वर जी और श्री नरेन्द्र हीरालाल द्वारा सम्पन्न कराया गया था ˙ २५ अगस्त २००८ में मूर्तियों का विशाल जुलूस, वायुयान द्वारा यहां लाया गया था। और २७ अगस्त २०१० को प्रतिश्ठा प्रदर्षन का कार्यक्रम सम्पन्न किया गया था ।

साउथ अफ्रीका में जैनधर्म

ब्रिटिश उपनिवेश शासन के अधीन होने के कारण भारत और दक्षिण अफ्रीका में व्यापार और व्यवसाय काफी अधिक था। जिस कारण जैन पर्यटकों की अधिक संख्या के कारण कई जैन समुदायों ने दक्षिण अफ्रीका में रेस्तरा/होटल खोले जिस कारण उनका व्यवसाय चल गया और वे यहीं के निवासी हो गये । और जैन धर्म का प्रसार होता चला गया ।

कनाडा में जैनधर्म

जैनधर्म के अनुयायी १९ वीं भाताब्दी में कनाडा में काफी कम संख्या में बढ़े हुऐ थे । परन्तु जब कनाडा में जैन मन्दिर की स्थापना हुई तो जैनियों की संख्या में अचानक वृद्धि होती चली गई।कनाडा के आब्रजन कानून के उदारीकरण के कारण १९७० के दशक में जैनियों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई । उन्होने आध्यात्मिक और सॉस्कृतिक पहचान की अनूठी मिशाल प्रस्तुत की एवं कनाडा में स्थापित होने के लिए अप्रवासी जैन समुदाय के लिए अनुमति प्रदान कर दी गई तब से जेन समुदाय अधिकतर औंटारियो एवं विशेष रूप से टोरंटो में निवास करता है ।

होंगकोंग में जैनधर्म

अन्य देशों की तुलना में ज्यादातर जैन समुदाय हांगकांग में आकर बसे हुऐ है। वे राजस्थान, उत्तर भारत के अन्य भागों तथा अन्य, भारतीय राज्यों से आकर हांगकांग में बस गये। १९८० के दशक में इसकी संख्या में तेजी से वृद्धि हुई । जैनियों में यहां हीरे का व्यापार सबसे प्रमुख है। १९९६ में जैन समुदाय के सदस्यों ने श्री हांगकांग जैन संघ की स्थापना की तथा सिमशासुई में एक मन्दिर की स्थापना की। यहॅा का जैन समुदाय संख्या में कम होने के कारण अलग धार्मिक संस्थाओं का निर्माण ना करे स्वंय को हिन्दू सम्प्रदायों से भी संबंध स्थापित करते है।तथा हिन्दू मन्दिरों के निर्माण में भी भाग लेते रहे।

यूनान में जैन धर्म

यूनान में भी सभ्यता का विकास श्रमण संसकृति की प्रगति के साथ-साथ लगभग १५०० ईसा पूर्व में प्रारम्भ हुआ । वहॅा भी लोकहितैषी श्रमण सन्तों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है जो कर्मकाण्ड से दूर रहकर सरल जीवन -यापन का उपदेश देते थे । इसी समय वर्तमान तुर्की और

www.ijahms.com

उससे दक्षिण में लेबनान और सीरिया में हत्ती ओर मितन्नी सभ्यातायें विकसित हो रही थी। इन दोनों सभ्यताओं की तत्कालीन भारतीय सभ्यता से गहरी समानता थी। दोनों के आराध्य देव तक की तत्कालीन भारतीय सभ्यता से गहरी सभ्यतायें ही थीं । दोनों में पुरोहितों और सन्यासियों की सुस्थापित परम्परायें थीं । इनका सीधा प्रभाव यूनान की सभ्यता और उसकी उत्तराधिकारी रोम की सभ्यता पर भी पड़ा। सिकन्दर ३२४ ईसा पूर्व में भारत से लौट गया और ३२३ ईसा पूर्व में उसका निधन हुआ । उसके पश्चात सैल्यूकस ने कब भारत पर आक्रमण किया इसका समाधान उड़ीसा के हाथी गुफा-अभिलेख में है। मगध-यूनान संघर्ष ३१५ ईसा पूर्व में हुआ था और उस समय मगध पर बुहस्पति-मित्र (बिन्दुसार) का शासन था। हाथी गुफा अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि वह संमर्द इतिहास प्रसिद्ध सन्धि में समाप्त हुआ किन्तु आश्चर्य यह है कि विश्व प्रसिद्ध जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के महामात्य एवं गुरू चाणक्य का उल्लेख न तो मेगस्थनीज ने किया है और न खारवेल ने ही।

यूरोप में जैनधर्म

जैनधर्म पारंपरिक रूप से भारतीय उपमहाद्वीप और मध्य पूर्व के कुछ हिस्सों तक ही सीमित कर दिया गया। पश्चिमी देशों में बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ाने के लियें आव्रजन नीतियों को भी उदार बनाया जा रहा है। हालॉकि स्थानीय जैन आवादी बढ़ रही है।पश्चिम में जैन धर्म की शुरूआत करने का क्रेडिट जर्मन वेज्ञानिक हरमन जैकोवी को जाता है। इन्होने कुछ जैन साहित्यों का अनुवाद किया तथा १८८४ में पवित्र पुस्तकों में इसे प्रकाशित किया। धीरे-धीरे जैन धर्म उत्तर अमेरिका से सुदूर पूर्व,पश्चिमी यूरोप, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में बढ़ रहा है। महात्मा गांधी ने जैन धर्म द्वारा अहिंसा और माट्रिन लूथर किंग, जूनियर, अल्वर्ट ब्हिअजर जैसे नेताओं को भी प्रकरित किया ।

यूनाईटेड किंगडम में जैनधर्म

यूनाईटेड किंगडम में जैनधर्म ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट पर जैन केन्द्र में (२००६) में करीब २५००० लोग दिखते है। चम्पतराय जैन जो १८९२-१८९७ के दौरान इंग्लैण्ड में कानून का अध्ययन करने वाले प्रथम जैन थे। उन्होने अंग्रेजी में कई जैन ग्रंथों का अनुवाद किया।बाद में १९३० में ऋशभ जैन लैंडिग लाइब्रेरी की स्थापना की । लीसेस्टर का जैन मन्दिर वहां के मन्दिरों में एक प्रसिद्ध जैन मन्दिर है। ग्रीनफोर्ड लंदन में जैनोलॉजी का एक संस्थान भी स्थित है ।

ISSN NO.2395-0692
IJAHMS International Journal of Arts, Humanities and Management Studies

बंगला देश में जैन धर्म

बांग्लादेश और उसके निकटवर्ती पूर्वी क्षेत्र और कामरूप जनपद में जैन संसकृति का व्यापक प्रचार प्रसार रहा है, जिसके प्रचुर संकेत सम्पूर्ण वैदिक और परवर्ती साहित्य में उपलब्ध हैं। आज इस कामरूप प्रदेश में जिसमें बिहार, उड़ीसा और बंगाल भी आते हैं, सर्वत्र गॉव-गॉव जिलों-जिलों में प्राचीन सराक जैन संस्कृति की व्यापक शोध खोज हो रही है, और नये नये तथ्य उद्धघाटित हो रहे हैं।

पहाड़पुर (राजशाही बंगलादेश) में उपलब्ध ४७८ ईस्वी के ताम्रपत्र के अनुसार पहाड़पुर में एक जैन मंदिर था, जिसमें ५००० जैन मुनि, ध्यान अध्ययन करते थे, और जिसके ध्वंसावशेष चारों ओर बिखरे पड़े हैं। **विदेशों में जैन-साहित्य और कला-सामग्री**

लंदन-स्थित अनेक पुस्तकालयों में भारतीय ग्रंथ विद्यमान हैं, जिनमे से एक पुस्तकालय मे तो १४०० हस्तलिखित भारतीय ग्रंथ हैं । अधिकतर ग्रंथ प्राकृत संस्कृत भाषाओं में हैं, और जैनधर्म से संबधित हैं। जर्मनी में भी बर्लिन स्थित एक पुस्तकालय में बड़ी संख्या में जैन ग्रंथ विद्यमान हैं, अमेरिका के वाशिंगटन और बोस्टन नगर में ५०० से अधिक पुस्तकालय हैं, इनमें से एक पुस्तकालय में ४० लाख हस्तलिहिखत पुस्तकें हैं, जिनमें से २०००० पुस्तकें प्राकृत, संस्कृत भाषाओं में हैं, जो भारत से गई हुई हैं । में ११०० से अधिक बड़े पुस्तकालय हैं, जिनमें पेरिस स्थित बिब्लियोथिक नामक पुस्तकालय में ४० लाख पुस्तकें हैं। उनमें १२ हजार पुस्तकें प्राकृत, संस्कृत भाषा की हैं, जिनमें जैन ग्रंथों का अच्छी संख्या है।

रूस में एक राष्ट्रीय पुस्तकालय हैं, जिसमें ५ लाख पुस्तकें हैं । उनमें २२ हजार पुस्तकें प्राकृत, संस्कृत की हैं । इनमें जैन ग्रंथों की भी बड़ी संख्या है ।

इटली के पुस्तकालयों में ६० हजार पुस्तकें तो प्राकृत, संस्कृत की हैं, और इसमें जैन पुस्तकें बड़ी संख्या में हैं ।

नेपाल के काठमांण्डू स्थित पुस्तकालयों में हजारों की संख्या में जैन प्राकृत और संस्कृत ग्रंथ विद्यमान हैं ।

इसी प्रकार चीन, तिब्बत, वर्मा, इंडोनेशिया, जापान, मंगोलिया, कोरिया, तुर्की, ईरान, अल्जीरिया, काबुल आदि के पुस्तकालयों में भी जैन-भारतीय ग्रंथ बड़ी संख्या में उपलब्ध है ।

भारत से विदेशों में ग्रंथ ले जाने की प्रवृत्ति केवल अंग्रेजीकाल से ही प्रारंभ नहीं हुई, अपितु इससे हजारों वर्ष पूर्व भी भारत की इस अमूल्य निधि को विदेशी लोग अपने -अपने देशो में ले जाते रहे हैं।वे लोग भारत से कितने ग्रंथ ले गये, उनकी संख्या का सही अनुमान लगाना कठिन

www.ijahms.com

है। इसके अतिरिक्त म्लेच्छों, आततायियों, धर्मद्वेशियों ने हजारों , लाखों की संख्या में हमारे साहित्य रत्नों को जला दिया।इसी प्रकार जैन मंदिरों , मूर्तियों, स्मारकों , स्तूपों आदि पर भी अत्यधिक अत्याचार हुऐ है।बड़े-बड़े जैन तीर्थ, मंदिर स्मारक आदि भंजकों ने धराशायी किये। अफगानिस्तान, काश्यपक्षेत्र, सिंधु, सोवीर, ब्लूचिस्तान, बेबीलोन, सुमेरिया, पंजाब, तक्षशिला तथा कामरूप प्रदेश बांग्लादेश आदि प्राचीन जैन संस्कृति बहुल क्षेत्रों में यह विनाशलीला चलती रही। अनेक जैन मंदिरों को हिन्दू और बौद्ध मंदिरों में परिवर्तित कर लिया गया या उनमें मस्जिदें बना ली गई। अनेक जैन मंदिर, मूर्तियों आदि अन्य धर्मियों के हाथों में चले गये।

संदर्भग्रन्थ सूची

i. हिन्दी विश्वकोश, श्री नागेन्द्रनाथ वसु पृष्ठ १२८
ii. श्री भिक्खु चमनलाल, शोध लेख, २० जुलाई,१६७५ हिन्दुस्तान टाइम्स,नई दिल्ली
iii. तै ाे त्रिपिटक भा.३३, पृष्ठ १६८
iv. बौद्ध चीनी यात्री हेनसांग, भारत भ्रमण का विवरण पृष्ठ ११३
v. सी. जे. शाह-”जैनिस्म इन नारर्दर्न इंडिया,लंदन,१६३२“
vi. जैन शास्त्र भण्डार तिजारा,राजस्थान
vii. सिंधी जैन ग्रन्थमाला, विविध तीर्थकल्प पृष्ठ ८६
viii. पदकपंद मगचतमेध्श्दमू कमीसप २१६६६१६६७